नईदुनिया

संपादकीय

सर्वोच्च न्यायालय की टिप्पणी गंभीर

सर्वोच्च न्यायालय की यह टिप्पणी नि:संदेह बहुत गंभीर है कि संविधान को लागू हुए पचहत्तर वर्ष हो गए, अब तो कम से कम पुलिस को अभिव्यक्ति की आजादी का अर्थ समझना चाहिए। हालांकि यह टिप्पणी कोई पहली बार नहीं आई है। इससे पहले भी कई मौकों पर वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर बहसें हो चुकी हैं, अदालतें पुलिस को नसीहत दे चुकी हैं, मगर शायद उस पर संजीदगी से अमल की जरूरत नहीं समझी गई। इसी का नतीजा है कि अब भी जब तब ऐसे मामले अदालतों में पहुंच जाते हैं, जिनसे किसी की भावना के आहत होने का आरोप लगता है, जबकि वास्तव में उनमें ऐसा कुछ नहीं होता।

चाहे वह फिल्मों के दृश्यों-संवादों, किसी राजनेता के बयानों या साहित्य के किसी अंश को लेकर भावनाएं आहत करने या भड़काने के आरोप लगते रहे हों या किसी ऐतिहासिक-मिथकीय प्रसंग को लेकर की गई टिप्पणी पर। कई बार तो कुछ बातों को लेकर आंदोलन तक उभारने की कोशिशें देखी गई हैं। ताजा मामला कांग्रेस नेता इमरान प्रतापगढ़ी की एक कविता को लेकर उठा, जब उन्होंने गुजरात के एक विवाह समारोह में उसे सुनाया और फिर सोशल मीडिया पर उसका अंश डाल दिया। उन पर आरोप लगा कि कविता में लोगों में हिंसा भड़काने का प्रयास किया गया है। वहां की पुलिस ने इस पर मुकदमा भी दर्ज कर लिया।

साहित्य और कलाओं में अभिव्यक्त विचार कई बार प्रतीकों और बिंबों में छिपे होते हैं, इसलिए उनके सही अर्थ खोलने में दिक्कत आ सकती है। प्रतापगढ़ी के मामले में गुजरात पुलिस को भी इसी के चलते धोखा हुआ होगा। सर्वोच्च न्यायालय ने इसे स्पष्ट भी किया कि अनुवाद में गलती की वजह से यह भ्रम हुआ होगा। मगर आजकल जिस तरह चुनिंदा तरीके से किसी के बयानों से भावनाओं के आहत होने के आरोप कुछ अधिक लगने लगे हैं और उनमें से कई मामलों में कानूनी कार्रवाई भी कर दी जाती है, उससे संविधान में वर्णित अभिव्यक्ति की आजादी का संकल्प ही धुंधला पड़ता नजर आने लगता है। जबकि कई बार स्थितियां इसके उलट भी देखी जाती हैं, मगर उन पर कोई कार्रवाई नहीं होती। जबसे सोशल मीडिया का चलन बढ़ा है, देशभक्ति, धर्म और आस्था के नाम पर कुछ लोग कुछ भी कहते-बोलते देखे जाने लगे हैं। धर्म संसदों और कई सार्वजनिक सभाओं में संतों और राजनेताओं के आपत्तिजनक बयान देखे-सुने गए, मगर उनमें पुलिस का रवैया पक्षपातपूर्ण ही देखा गया। इसलिए सर्वोच्च न्यायालय की यह टिप्पणी महत्त्वपूर्ण है कि प्राथमिकी दर्ज करने से पहले पुलिस को कुछ तो संवेदनशीलता दिखानी होगी।

हालांकि यह छिपी बात नहीं है कि पुलिस स्वायत्त तरीके से काम नहीं करती। अनेक कार्रवाइयां उसे सत्ता पक्ष के दबाव में करनी पड़ती हैं। इसलिए विपक्षी दलों के मामले में अगर अभिव्यक्ति की आजादी के कानून को हाशिये पर धकेल दिया या नजरअंदाज कर दिया जाता है, तो हैरानी की बात नहीं। यह कम बड़ी विडंबना नहीं कि साहित्य और कलाओं में अभिव्यक्त विचारों की व्याख्या भी अदालतों को करनी पड़ रही है। सत्ताएं सदा से अपनी आलोचना से तल्ख हो जाती रही हैं, पर आखिर अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की रक्षा कौन करेगा। पहला कर्तव्य तो पुलिस का ही बनता है कि वह उसकी सही-सही व्याख्या करे और फिर कानूनी कार्रवाई के बारे में सोचे। पर राजनीतिक उदारता के बगैर यह संभव नहीं जान पड़ता।

महिलाओं के प्रति नजरिया बदलने का वक्त

रमेश सर्राफ धमोरा

(8 मार्च अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस पर विशेष)

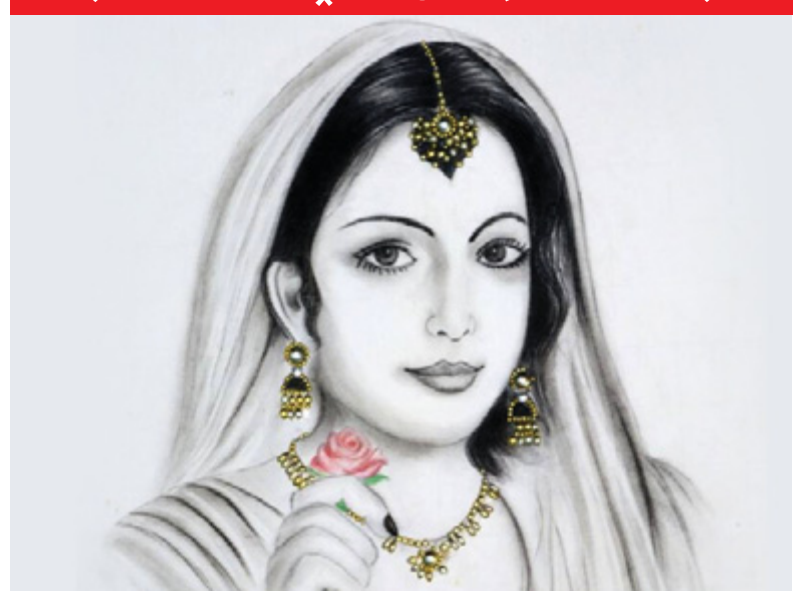

भारत वह देश है जहां महिलाओं की सुरक्षा और इज्जत का खास ख्याल रखा जाता है। अगर हम 21वीं सदी की बात करें तो यहां की महिलाएं हर क्षेत्र में पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिला काम कर रही है। अब तो भारत की संसद ने भी महिलाओं के लिए लोकसभा व विधानसभाओं में 33 प्रतिशत आरक्षण का विधेयक पास कर दिया है। इससे आने वाले समय में भारत की राजनीति में महिलाओं की भूमिका अधिक महत्वपूर्ण होनी तय है। देश में महिलाओं को अब सेना में भी महत्वपूर्ण पदों पर तैनात किया जाने लगा है। यह महिला सशक्तीकरण की दिशा में एक बड़ा कदम है।

यहां महिलाओं को पुरुषों के बराबर अधिकार है। महिलायें देश की आधी आबादी का प्रतिनिधित्व करती हैं तथा विकास में भी बराबर की भागीदार हैं। आज के युग में महिला पुरुषों के साथ ही नहीं बल्कि उनसे दो कदम आगे निकल चुकी है। महिलाओं के बिना समाज की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। भारतीय संविधान के अनुसार महिलाओं को भी पुरुषों के समान जीवन जीने का हक है। भारत में नारी को देवी के रूप में देखा गया है।

कहा जाता है कि जहां नारी की पूजा होती है वहां देवता निवास करते हैं। प्राचीन काल से ही यहां महिलाओं को समाज में विशिष्ट आदर एवं सम्मान दिया जाता है। अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस हर साल 08 मार्च 1911 से पूरे विश्व में मनाया जाता है। इसका उद्देश्य महिलाओं की सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक उपलब्धियों का जश्न मनाना है। अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस 2025 का थीम है- कार्रवाई में तेजी लाना।

राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (एनसीआरबी) के ताजा आंकड़ों के मुताबिक साल 2023 में भारत में महिलाओं के खिलाफ कुल 4,05,861 अपराध दर्ज किए गए। इनमें सबसे ज्यादा घरेलू हिंसा और यौन उत्पीड़न के मामले हैं। यह आंकड़े समाज में महिलाओं की सुरक्षा के प्रति समाज और परिवार की उदासीनता को दर्शाते हैं। 2022 में 4,45,256 मामले, 2021 में 4,28,278 मामले 2020 में 3,71,503 मामले दर्ज किए गए थे। आंकड़ों के मुताबिक प्रति एक लाख आबादी पर महिला अपराध की दर 66.4 फीसदी रिकॉर्ड की गई। भारतीय दंड संहिता के तहत महिलाओं के खिलाफ सबसे ज्यादा 31.4 फीसदी जुर्म पति या उसके रिश्तेदारों की क्रूरता के हैं। इसके बाद अपहरण के 19.2 फीसदी, शील भंग करने के इरादे से हमले के 18.7 फीसदी और दुष्कर्म के 7.1 फीसदी मामले हैं। पिछले साल देश में जितने मामले सामने आए उनमें से 2,23,635 यानी 50 फीसदी उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, राजस्थान, पश्चिम बंगाल और मध्य प्रदेश में दर्ज किए गए। उत्तर प्रदेश में 2021 में महिला अपराध के 56,083 और और 2020 में 49,385 मामले दर्ज किए थे। इसके बाद राजस्थान (40,738 और 34,535), महाराष्ट्र (39,526 और 31,954), पश्चिम बंगाल (35,884 और 36,439) और मध्य प्रदेश (30,673 और 25,640) रहे थे।

भारत में वर्षों से महिला सुरक्षा से जुड़े कई कानून हैं। इसमें हिंदू विडो रीमैरिज एक्ट 1856, इंडियन पीनल कोड 1860, मैटरनिटी बेनिफिट एक्ट 1861, क्रिस्चियन मैरिज एक्ट 1872, मैरिड वीमेन प्रॉपर्टी एक्ट 1874,चाइल्ड मैरिज एक्ट 1929, स्पेशल मैरिज एक्ट 1954, हिन्दू मैरिज एक्ट 1955, फॉरेन मैरिज एक्ट 1969, इंडियन डाइवोर्स एक्ट 1969, मुस्लिम वुमन प्रोटेक्शन एक्ट 1986, नेशनल कमीशन फॉर वुमन एक्ट 1990, सेक्सुअल हर्रास्मेंट ऑफ वुमन एट वर्किंग प्लेस एक्ट 2013 आदि। इसके अलावा 7 मई 2015 को लोक सभा ने और 22 दिसम्बर 2015 को राज्य सभा ने जुवेनाइल जस्टिस बिल में भी बदलाव किया है। इसके अन्तर्गत यदि कोई 16 से 18 साल का किशोर जघन्य अपराध में लिप्त पाया जाता है तो उसे भी कठोर सजा का प्रावधान है।

राष्ट्रीय महिला आयोग के आंकड़ों के मुताबिक 2023 में महिलाओं के खिलाफ अपराध के मामले में उत्तर प्रदेश सबसे आगे रहा। देश भर से पूरे साल में महिलाओं के खिलाफ अपराध की 28,811 शिकायतें मिलीं। इसमें 16 हजार से ज्यादा मामले उत्तर प्रदेश राज्य से आए । दूसरे नंबर पर राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली में 2,411 मामले दर्ज किए गए। महाराष्ट्र में 1,343, बिहार में 1,312 और मध्य प्रदेश में 1,165 इतने मामले दर्ज किए गए हैं।

2023 के 12 महीने बाद जारी किए गए इस रिपोर्ट में महिलाओं के प्रति हो रहे अपराध में दहेज उत्पीड़न और दुष्कर्म जैसे अपराध दर्ज किए गए हैं। राष्ट्रीय महिला आयोग की यह रिपोर्ट महिलाओं के प्रति पुलिस की उदासीनता दिखाती है। आंकड़ों के मुताबिक देश भर में यौन उत्पीड़न के 805 मामले, साइबर अपराध के 605 मामले, पीछा करने की 472 मामले और सम्मान से जुड़े अपराध के खिलाफ 409 शिकायतें दर्ज कराई गईं। आंकड़ों के मुताबिक, महिलाओं के खिलाफ अपराधों में बलात्कार के मामले भी शामिल हैं। साल 2023 में बलात्कार और बलात्कार के प्रयास के 1,537 मामले दर्ज किए गए। इसके बाद गरिमा के अधिकार के तहत 8,540, घरेलू हिंसा के 6,274, दहेज उत्पीड़न के 4,797, छेड़छाड़ के 2,349,और महिलाओं के प्रति पुलिस की उदासीनता के 1,618 मामले दर्ज किए गए।

2023 में महिलाओं के खिलाफ अपराध के मामले 2022 की तुलना में कम हुए हैं। 2022 में महिलाओं के खिलाफ अपराध के 30,864 मामले दर्ज किए गए थे। जबकि 2023 में यह संख्या घटकर 28,278 हो गई। यह एक सकारात्मक संकेत है लेकिन अभी भी बहुत कुछ किया जाना बाकी है। साल 2022 के बाद से शिकायतों की संख्या में कमी देखी गई है। जब 30,864 शिकायतें प्राप्त हुई थी, जो 2014 के बाद से सर्वाधिक आंकड़ा था। जहां तक बात महिलाओं की सुरक्षा की आती है तो पिछले कुछ वर्षों में भारत ने अभूतपूर्व निर्णयों से महिलाओं की सुरक्षा के लिए कई प्रबंध किए हैं। आज भारत में महिलाएं पहले की अपेक्षा ज्यादा सुरक्षित है।

हम एक तरफ महिलाओं को हर क्षेत्र में बराबरी का दर्जा देकर उन्हे आगे बढ़ा रहें है। वहीं दूसरी तरफ उनके साथ अत्याचार की घटनाओं में भी लगातार बढ़ोतरी हो रही है। आये दिन हमें महिलाओं के साथ बलात्कार, दुर्व्यवहार होने की घटनाये सुनने को मिलती रहती है। ऐसी घटनाओं से महिला सशक्तीकरण के अभियान को धक्का लगता हैं। देश में महिलाओं के प्रति खराब होते माहौल को बदलने की जिम्मेदारी सिर्फ सरकार की ही नहीं अपितु हर आम आदमी की भी है। हम सभी को आगे आकर महिला सुरक्षा की लड़ाई में महिलाओं का साथ देना होगा तभी देश की मातृ शक्ति सर उठा कर शान से चल सकेगीं। अब महिलाओं को समझना होगा कि आज समाज में उनकी दयनीय स्थिति समाज में चली आ रही परम्पराओं का परिणाम है। इन परम्पराओं को बदलने का बीड़ा स्वयं महिलाओं को ही उठाना होगा। तभी समाज में उनके प्रति सोच बदल पाएगी।

बलात्कार और हिंसा पर कब टूटेगी समाज की चुप्पी?

योगेश कुमार गोयल

देश में कानूनों में सख्ती, महिला सुरक्षा के नाम पर बीते कुछ वर्षों में कई तरह के कदम उठाने और समाज में 'आधी दुनिया' के आत्मसम्मान को लेकर बढ़ती संवेदनशीलता के बावजूद आखिर ऐसे क्या कारण हैं कि बलात्कार के मामले हों या छेड़छाड़ अथवा मर्यादा हनन या फिर अपहरण अथवा क्रूरता, 'आधी दुनिया' के प्रति अपराधों का सिलसिला थम नहीं रहा है?

दुनियाभर में प्रतिवर्ष 8 मार्च को 'अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस' मनाया जाता है, जो सही मायनों में महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक उपलब्धियों का जश्न मनाने वाला एक वैश्विक दिवस है। यह दिन लैंगिक समानता में तेजी लाने के लिए कार्रवाई के आह्वान का भी प्रतीक है। हालांकि चिंता का विषय यही है कि जिस 'आधी दुनिया' के प्रति सम्मान प्रदर्शित करने के लिए यह दिवस मनाया जाता है, उसी आधी दुनिया को जीवन के हर मोड़ पर भेदभाव या अपराधों का सामना करना पड़ता है। यदि इसे भारत के ही संदर्भ में देखें तो शायद ही कोई दिन ऐसा बीतता हो, जब 'आधी दुनिया' से जुड़े अपराधों के मामले देश के कोने-कोने से सामने न आते हों। होता सिर्फ यही है कि जब भी कोई बड़ा मामला सामने आता है तो हम सिर्फ पुलिस-प्रशासन को कोसने और संसद से लेकर सड़क तक कैंडल मार्च निकालने या अन्य किसी प्रकार से विरोध प्रदर्शन करने की रस्म अदायगी करके शांत हो जाते हैं और पुन: तभी जागते हैं, जब ऐसा ही कोई बड़ा मामला पुन: सुर्खियां बनता है, अन्यथा ऐसी छोटी-मोटी घटनाएं तो आए दिन होती ही रहती हैं।

देश में कानूनों में सख्ती, महिला सुरक्षा के नाम पर बीते कुछ वर्षों में कई तरह के कदम उठाने और समाज में 'आधी दुनिया' के आत्मसम्मान को लेकर बढ़ती संवेदनशीलता के बावजूद आखिर ऐसे क्या कारण हैं कि बलात्कार के मामले हों या छेड़छाड़ अथवा मर्यादा हनन या फिर अपहरण अथवा क्रूरता, 'आधी दुनिया' के प्रति अपराधों का सिलसिला थम नहीं रहा है? इसका एक बड़ा कारण तो यही है कि कड़े कानूनों के बावजूद असामाजिक तत्वों पर वो कड़ी कार्रवाई नहीं हो रही है, जिसके वो हकदार हैं और इसके अभाव में हम ऐसे अपराधियों के मन में भय पैदा करने में असफल हो रहे हैं। कहना गलत नहीं होगा कि महज कानून कड़े कर देने से ही महिलाओं के प्रति हो रहे अपराध थमने से रहे, जब तक उनका ईमानदारीपूर्वक कड़ाई से पालन न किया जाए। ऐसे मामलों में पुलिस-प्रशासन की भूमिका भी अनेक अवसरों पर संदिग्ध रहती है। पुलिस किस प्रकार ऐसे अनेक मामलों में पीड़िताओं को ही परेशान करके उनके जले पर नमक छिड़कने का कार्य करती है, ऐसे उदाहरण अक्सर सामने आते रहे हैं। ऐसी परिस्थितियों के मद्देनजर अपराधियों के मन में पुलिस और कानून का भय कैसे उत्पन्न होगा और कैसे महिलाओं के प्रति हो रहे अपराधों में कमी की उम्मीद की जाए? जरूरत इस बात की महसूस की जाने लगी है कि पुलिस को लैंगिक दृष्टि से संवदेनशील बनाया जाए ताकि पुलिस पीड़ित पक्ष को पर्याप्त संबल प्रदान करे और पीडिताएं अपराधियों के खिलाफ खुलकर खड़ा होने की हिम्मत जुटा सकें, साथ ही जांच एजेंसियों और न्यायिक तंत्र से भी ऐसे मामलों में तत्परता से कार्रवाई की अपेक्षा की जानी चाहिए। ऐसी घटनाओं पर अंकुश के लिए समय की मांग यही है कि सरकारें मशीनरी को चुस्त-दुरूस्त बनाने के साथ-साथ प्रशासन की जवाबदेही सुनिश्चित करें कि यदि उनके क्षेत्र में महिलाओं के प्रति हो रहे अपराधों के मामलों में कानून का अनुपालन सुनिश्चित नहीं हुआ तो उन पर सख्त कार्रवाई की जाए।

सामने आती दिनदहाड़े छेड़छाड़, अपहरण, बलात्कार या सामूहिक दुष्कर्म जैसी घटनाएं सभ्य समाज के माथे पर बदनुमा दाग के समान हैं और यह कहना असंगत नहीं होगा कि महज कड़े कानून बना देने से ही महिला उत्पीड़न की घटनाओं पर अंकुश नहीं लगने वाला। आए दिन देशभर में हो रही इस तरह की घटनाएं हमारी सभ्यता की पोल खोलने के लिए पर्याप्त हैं। इस तथ्य को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता कि बलात्कार और छेड़छाड़ के जो मामले सामने आ रहे हैं, उनमें बहुत से ऐसे भी होते हैं, जिनमें पीड़िता के परिजन, निकट संबंधी या परिचित ही आरोपी होते हैं। दिल्ली पुलिस द्वारा जारी आंकड़ों में तो यहां तक कहा जा चुका है कि करीब 97 फीसदी मामलों में महिलाएं अपनों की ही शिकार होती हैं और यह समस्या सिर्फ दिल्ली तक ही सीमित नहीं है, बल्कि महिला अपराधों के मामले में पूरी दुनिया की यही तस्वीर है। जहां देश में हर 53 मिनट में एक महिला यौन शोषण की शिकार होती है और हर 28 मिनट में अपहरण का मामला सामने आता है, वहीं संयुक्त राष्ट्र के आंकड़ों के अनुसार दुनिया में प्रत्येक तीन में से एक महिला का कभी न कभी शारीरिक शोषण होता है। दुनिया में करीब 71 फीसदी महिलाएं शारीरिक मानसिक प्रताड़ना अथवा यौन शोषण व हिंसा की शिकार होती हैं, दक्षिण अफ्रीका में हर छह घंटे में एक महिला को उसके साथी द्वारा ही मौत के घाट उतार दिया जाता है और अमेरिका में भी इसी प्रकार कई महिलाएं हर साल अपने ही परिचितों द्वारा मार दी जाती हैं।

जहां तक पीड़िताओं को न्याय दिलाने की बात है तो इसके लिए फास्ट ट्रैक कोर्ट की मांग काफी समय से उठती रही है किन्तु हमारा सिस्टम कछुआ चाल से रेंग रहा है। ऐसे मामलों में कठोरता बरतने के साथ-साथ त्वरित न्याय प्रणाली की भी सख्त जरूरत है ताकि महिला अपराधों पर अंकुश लग सके।

आजकल

मंत्री के बिगड़े बोल

पिछले कुछ समय से ऐसा लगता है कि जो नेता आम लोगों के समर्थन से राजनीति, सत्ता और तंत्र में अपनी जगह बनाते हैं, वे बाद में किसी समस्या के लिए जनता को ही कठघरे में खड़ा करना शुरू कर देते हैं। आए दिन अलग-अलग पार्टियों से जुड़े नेता बिना सोचे-समझे ऐसे बयान दे देते हैं, जो कई लिहाज से आपत्तिजनक होता है। पद या सत्ता का सुरक्षित घेरा मिल जाने के बाद आम लोगों की अहमियत को नकार देना और दुखी या अपमानित करने वाले बयान देना एक बड़ी राजनीतिक विडंबना है।

गौरतलब है कि मध्यप्रदेश में भारतीय जनता पार्टी की सरकार में पंचायत एवं ग्रामीण विकास मंत्री ने एक कार्यक्रम के दौरान कहा कि लोगों को मांगने की आदत पड़ गई है, अब तो वे सरकार से भीख मांगने के भी आदी होने लगे हैं। खबरों के मुताबिक, उन्होंने यह भी कहा कि हमेशा लेने के बजाय देने की मानसिकता विकसित करें।

संबंधित मंत्री का इस तरह का बयान वैसे समय में आया है, जब देश भर में सरकारों द्वारा जनता को दी जाने वाली मुफ्त की सौगातों की होड़ बहस के घेरे में है। ऐसे में सवाल उठ रहे हैं कि चुनावी जीत हासिल करने के लिए सरकार बनने पर कई तरह की सुविधाएं और सेवाएं मुफ्त मुहैया कराने का आखिर क्या औचित्य है! सवाल है कि जिस नेता को मुफ्त सुविधाओं पर आपत्ति है, क्या वे देश की अन्य पार्टियों के साथ-साथ अपनी पार्टी के सामने ईमानदारी से यह सवाल रख सकेंगे कि वे चुनावों में जीत के लिए मुफ्त की सौगात की लोकलुभावन घोषणाएं क्यों करती हैं? जनता आज अगर सरकारों की ओर से कोई चीज या सेवा मुफ्त में मिलने की उम्मीद करने लगी है, तो इसके पीछे मुख्य कारण यही है कि बीते कुछ वर्षों से चुनावी जीत के लिए नेताओं के मुफ्त की सौगात देने के वादे हैं।

ऐसे में केवल जनता पर सवाल उठाने के बजाय जरूरत है कि नेता अपनी और पार्टियों की ओर झांकें, जो जनता को रोजगार देने या उन्हें सक्षम बनाने की वकालत करने के बजाय मुफ्त सुविधाएं और तोहफे देने की होड़ में लगी हैं।

क्लारा जेटकिनः महिला अधिकारों की प्रखर नेता...

प्रतिभा कुशवाहा

अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस हर साल 8 मार्च को मनाया जाता है। यह दिवस महिलाओं के अधिकारों, उनकी समानता, स्वतंत्रता और उनकी सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृति और राजनीतिक उपलब्धियों को पहचानने के लिये जाना जाता है। आज इसका इतिहास कोई सवा सौ वर्ष पुराना हो चुका है। विश्व के लगभग सभी देशों में यह खास दिन लैंगिक समानता, महिला सशक्तिकरण को बढ़ावा देने साथ महिलाओं सहित पुरुषों के सहयोग और उनमें संवेदनशीलता जगाने का माध्यम भी बनता है। इस दिवस की यही उपलब्धि भी है कि महिलाओं के साथ पुरुष भी पितृसत्ता को पहचानते हुये उसके दुष्परिणामों के प्रति सजग होकर महिलाओं के साथ एक सुंदर समाज का निर्माण करें।

अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस के इन उद्देश्यों के परे यह जानने में हम सबकी उत्सुकता इस बात में जरूर होनी चाहिये कि इस ऐतिहासिक दिवस को मूर्त रूप देने में किन लोगों का सार्थक प्रयास रहा और उनके किन प्रयासों से महिलाओं को आज पुरुषों के समान अधिकारों की बात की जा रही है। उनमें से एक प्रमुख नाम क्लारा जेटकिन (1857-1933) का आता है जिनके प्रयासों से यह दिवस आज हम सब मना पा रहे हैं। वे एक जर्मन समाजवादी, नारीवादी और राजनीतिक कार्यकर्ता थीं, जिन्होंने महिला अधिकारों, श्रमिक आंदोलन और समाजवाद के लिए जीवनभर संघर्ष किया।

क्लारा जेटकिन का जन्म 1857 में जर्मनी में हुआ था। उनकी मां भी महिला अधिकारों के लिये संघर्षरत थीं। ऐसे में वे बचपन से ही इस तरह के आंदोलनों के प्रमुख नेताओं के संपर्क में आने लगीं। वे स्कूली दिनों में ही रूसी क्रांतिकारी आंदोलन से परिचित हो चुकी थीं और जर्मन मजदूर आंदोलन से सहानुभूति रखती थीं। बाद में रूसी क्रांतिकारी ओसिप जेटकिन के संपर्क में आईं और उनके साथ काम भी किया। बाद में वे उनके जीनवसाथी भी बने। 1881 में क्लारा जेटकिन अपने पति के साथ पेरिस चली गईं, जब उन्हें जर्मनी से देश निकाला दे दिया गया था। यह वह समय था जब जर्मन मजदूर आंदोलन और उनकी पार्टी जर्मन सोशल डेमोक्रेटिक पार्टी को कई तरह के प्रतिबंध झेलने पड़े। 12 साल बाद 1890 में उन्हें इस तरह के प्रतिबंध से निजात मिलीं।

इस दौरान पेरिस में रहते हुये क्लारा सक्रिय रहीं अपने लेखों और भाषणों से महिला अधिकारों को आवाज उठाती रही। इसका परिणाम यह रहा कि उन्हें 1889 में महिलाओं से जुड़े सवालों पर दूसरी इंटरनेशनल कांग्रेस को संबोधित करने के लिये आमंत्रित किया गया। यहां वे एक सक्रिय महिला अधिकारों की प्रवक्ता बन कर उभरीं। 1891 में जर्मनी लौटने के साथ उन्होंने महिला अधिकारों की वकालत करने के लिये 'डाइ ग्लीचहाइट' नामक पत्रिका की स्थापना की और उसका आगे 25 सालों तक संपादन कार्य भी किया। जर्मन पत्रिका 'डाइ ग्लीचहाइट' का अर्थ 'समानता' है। इसके उप शीर्षक में 'महिला मजदूरों के हितों के लिये' लिखा जाता था।

1890 के दशक से लेकर प्रथम विश्वयुद्ध के शुरू होने तक जेटकिन ने जर्मन समाजवादी महिला आंदोलन को सफलतापूर्वक खड़ा करने के लिए अपनी ऊर्जा समर्पित की। 1907 तक समाजवादी महिला आंदोलन में 75,000 से ज्यादा महिलाएं शामिल हो चुकी थीं। यह 'डाइ ग्लीचहाइट' के सदस्यता अभियान से पता चलता है। हजारों महिलाओं को ट्रेड यूनियनों, शिक्षा समितियों में संगठित किया गया और 1908 के बाद जब महिला संघ के विरुद्ध कानून निरस्त कर दिया गया, तो एसपीडी में भी शामिल हो गईं। 1914 तक जर्मन सोशल डेमोक्रेटिक पार्टी यानी एसपीडी की 174,474 महिला सदस्य थीं। इसी बात से उनके कुशल सामाजिक और राजनीतिक कार्यकर्ता होने का सबूत मिलता है। 1910 का 'सोशलिस्ट इंटरनेशनल महिला सम्मेलन' महिलाओं के अधिकारों और समानता की दिशा में एक ऐतिहासिक मोड़ था। अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस मनाने का प्रस्ताव 1910 में कोपेनहेगन (डेनमार्क) में आयोजित इसी सम्मेलन में रखा गया था। क्लारा ने सुझाव दिया कि हर साल एक दिन अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस के रूप में मनाया जाना चाहिए, ताकि दुनिया भर में महिलाओं के अधिकारों, समानता और सशक्तिकरण को बढ़ावा दिया जा सके। इस प्रस्ताव को 17 देशों की 100 से अधिक महिलाओं ने समर्थन दिया। क्लारा जेटकिन के प्रस्ताव के एक साल बाद, 1911 में पहली बार अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस मनाया गया। यह 19 मार्च 1911 को ऑस्ट्रिया, जर्मनी, डेनमार्क और स्विट्जरलैंड में मनाया गया। लाखों महिलाओं और पुरुषों ने रैलियों, प्रदर्शनों और सभाओं के माध्यम से महिला अधिकारों की मांग की। इसके बाद 1975 में संयुक्त राष्ट्र ने इसे आधिकारिक मान्यता दी और इसे अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस घोषित किया गया।